कश्मीर का काला दिन : सचवंत सिंह का दर्द

80 साल के सरदार सचवंत सिंह 73 साल पहले की कबाइलियों की आड़ में पाकिस्तानी सेना की उस दरिंदगी और अत्याचार को याद करते हुए कहते हैं कि मैंने झेलम में पानी नहीं, खून का दरिया देखा है। मेरी मां, मेरी बहन कबाइलियों के हमले में शहीद हो गईं। भाई एक साल बाद मिला। बाप को करीब तीन साल बाद देखा। उस दिन सुबह सूरज जब निकला था तो उसकी लालिमा के साथ ही पूरे मुजफ्फराबाद को खून से लाल करने वाले कबाइलियों की गोलियां गूंजने लगी। लोगों की चीख-पुकार,आसमां में उड़ता काला धुआं और आग की लपटें, सचमुच वह दिन बहुत काला ही था।

दैनिक जागरण से बातचीत करते हुए सेवानिवृत्त कृषि निदेशक सरदार सचवंत सिंह ने कहा कि मैं उस समय सात साल का था। पिता फौज में थे और दक्षिण भारत में तैनात थे। हम दो भाई और हमारी एक बहन थी। हम अन्य रिश्तेदारों के साथ मुजफ्फराबाद के पास ही रहते थे। उस दिन गोलियों की आवाज से हमारी नींद खुली और मैंने अपने एक रिश्तेदार को जमीन पर खून से लहूलुहान देखा। मेरी मां, बड़े भाई और बहन को लेकर एक रात पहले ही श्रीनगर के लिए निकल चुकी थी। श्रीनगर के शहीदगंज इलाके में हमारा मकान था। वह वहां नहीं पहुंच पाईं। रास्ते में ही कबाइलियों और पाकिस्तानी फौजियों के घेरे में फंस गई थी। उनके साथ सरदार सम्मुख सिंह और अन्य लोगों ने अपने हथियारों से पाकिस्तानी फौजियों और कबाइलियों से मुकाबला किया पर उन्हें अधिक देर थाम नहीं पाए।

वह बताते हैं कि मेरी मां को भी इस दौरान गोली लग गई और बाद में उसकी मौत हो गई। बहन भी मारी गई। औरतों की इज्जत बचाने के लिए भाइयों ने अपनी ही बहनों पर गोलियां दाग दी। जिस बाप ने बेटी को गोद में खिलायाथा, वही उन्हें गोली मार रहा था ताकि वह किसी तरह बर्बरता से बच जाएं। सरदार सम्मुख सिंह ने स्वयं अपनी बेटियों को गोली मारी थी, लेकिन दोनों जख्मी होने के बाद बच गई। इनमें से आज एक उत्तराखंड के देहरादून में बसी है। उनके पास जब आखिरी गोली बची तो उन्होंने खुद को गोली मार ली थी।

सचवंत सिंह बताते हैं कि जान बचाने के लिए किस तरह उन्हें छिपते रहना पड़ा। वह दादी के साथ पैदल ही श्रीनगर के लिए निकले थे। मेरी टांग में गोली लगी थी और दादी अपनी पीठ पर उठाए चल रही थी। बड़ी मुश्किल से हम झेलम पुल पर पहुंचे, लेकिन बस दरिया के पार थी। हम लोग पैदल ही पुल पार करने लगे, लेकिन लोगों ने कबाइलियों को रोकने के लिए पुल के रस्से काटाना शुरु कर दिए। मेरी दादी ने मुझे पीठ पर उठाए रखा। दादी ने मुझे नहीं गिरने दिया, जैसे तैसे हम पुल के पार पहुंचे, बस निकल चुकी थी। वहां जो भी बचे खुचे लोग रह गए थे, सभी दिनभर जंगल में पेड़ों के बीच या फिर गुफाओं में छिपे रहते। रात होती तो कुछ युवा निकटवर्ती गांव या बस्ती में जाते और वहां खंडहर बने मकानों में जलने से बच गए राशन को तलाशते पर वहां न राशन था और न पानी।

एक दिन सभी कबाइलयों के हाथ लग गए। वह बताते हैं कि कबाइली उन्हें पकड़कर झेलम के पास एक कैंप में ले गए। रोज शाम को पाकस्तानी फौजी और कबाइली आते और किसी भी औरत को उठा ले

जाते। उन्होंने हमें जान बचाने का एक ही विकल्प दिया कि सभी मुस्लिम बन जाओ। बुजुर्गों ने एक दिन का समय मांगा। सबने मिलकर तय किया कि रोज-रोज मरने से बेहतर है, मौत का सामना किया जाए। सभी ने कैंप तोड़ भागने का प्रयास किया। गोलियां चली और फिर झेलम लाल हो गया। मेरी दादी ने भी मुझे एक तरफ फेंका ताकि मैं गोलियों से बच जाऊं, लेकिन मैं किनारे पर ही रहा। हम एक-दो दिन पत्थरों में छिपते छिपाते रहे। भारतीय सेना के रीनगर पहुंचने के बाद हमारा एक पड़ोसी मिल गया और हमें कैंप में ले गया। उसने ही मेरे बड़े भाई को तलाश किया। हम तीन साल तक वहां कैंपों में रहे। मेरे पिता ने अपनी पोस्टिंग उड़ी में कराई थी। वह रोज हमारी राह देखते थे। हम तीन साल बाद उनसे मिल पाए थे। पर हम तब तक काफी कुछ खो चुके थे।

वह बताते हैं कि सब कुछ लुटाकर यहां पहुंचे पर यहां भी विस्थापित ही रहे। हमारे लोग वहां अपना सबकुछ लुटाकर आए, लेकिन यहां हमारे पुनर्वास के नाम पर सियासत का खेल चला। प्रत्येक परिवार को 30 लाख रुपये देने का सरकार ने एलान किया था जो अब पांच लाख तक पहुंच गया है। मीरपुर, मुजफ्फराबाद, कोटली, चकोटी, शारदा, केल, नीलम,गड़ी दुपट्टा, हट्टियां, भिंबर, आप किसी भी जगह का नाम लें, वहां हिंदुओं और सिखों के साथ हुआ, उसे देखकर तो शैतान भी डर जाए। यह वह जख्म है जो आज भी रिसता है, लेकिन इसकी चर्चा कोई नहीं करता।

साभार- https://www.facebook.com/arya.samaj से